हिन्दी नवगीत में सामाजिक जीवन दृष्टि और लोक संवेदना

डॉ. प्रियंका*

एम.ए., एम.फिल्., पीएच.डी., यूजीसी नैट (हिन्दी)
सहायक प्रवक्ता (हिन्दी–विभाग),
गुरूनानक खलासा कॉलेज, करनाल, हरियाणा, भारत

Email ID: *priyankaklyan888@gmail.com*

Accepted: 06.01.2022 **Published**: 05.02.2022

मुख्य शब्दः हिन्दी नवगीत, सामाजिक जीवन, दृष्टि लोक संवेदना।

शोध आलेख सार

लोक संवेदना में भारतीय जन की बाहरी दुनिया में हुए तेजी से बदलाव के फलस्वरूप व्यक्ति की आन्तरिक टूटन और चिर–परिचित लोक से बिछुड़ने का विवश संत्रास नवगीत में अभिव्यक्त हुआ है। लोक के प्रति सच्चा व गहरा भाव–बोध नवगीतकार की असल पहचान है। लोक एक वृहत्तर परिवेश व्याप्त अभिधा है जा आंचलिक जन–जीवन की सीमाओं को लांघकर राष्ट्रीय नगरों व महानगरीय इकाईयों तक परिव्याप्त है। गाव में संयुक्त परिवार की टूटन तथा शहर में न्यस्त स्वार्थ के सम्बन्धों की स्मृतियों का एक समूचा लोक लेकर उपस्थित होते हैं। यही कारण है कि शहर में रहते हुए भी वह अपने घर, परिवार की निर्धनता, परिवारजनों की बीमारी उनके अभाव तथा परिवेश और गांववासियों की कुशल–क्षेम को भूल नहीं पाता। उसे बार–बार अपने गाव का वह जीवन याद आता है जो उसने उस परिवेश में गुजारा है।

पहचान निशान

**Corresponding Author*

प्रस्तावना

नवगीतकार योगेन्द्र दत्त शर्मा तो अपने गांव व गांव से जुड़ी यादों का स्मरण करते हुए भाव–विभोर हो उठते हैं। अपनी स्मृति में उन्हें गाँव की एक–एक चीज जीवन्त सी महसूस होती है–

डालों पर झूलने लगे होंगे/टूटे–से घोसलें बया के,
सहमे खरगोश ने कहे होगें/ याचना–भरे वचन दया के,
अब भी आशीष दे रहा होगा/वह बूढ़ा झुका हुआ बरगद
चिड़ियों की चिहुंक गूंजती होगी/भोर की हवाओं में अनहद।[1]

नवगीतकारों ने अपनी स्मृतियों में खोये हुए गाँव को तलाशने की कोशिश की है। खाली होते गाँव के दर्द को गाँव से शहर आ बसे मन की पीड़ा को गीतकार विनोद निगम ने स्वर दिया है–

अपनी पगडंडी को छोड़/जाने मैं कहा चला आया
वे फसलें, खेत वे सिवान/महुओं के तन छुई हवा
खुले हुए जूड़े गंधों के/शिराओं में तैरता नशा।[2]

नवगीतकार मूलतः ग्रामवासी रहा है। ग्रामीण प्रकृति और जन–जीवन से उसका सम्बन्ध दृष्टा मात्र न होकर भोक्ता का रहा है। इसलिए शंभुनाथ सिंह को अपनी धरती 'मा' जैसी और गाव 'पिता' समान लगता है। गाव के बाग–बगीचे और वहा की प्रकृति कोउनका मन कभी नहीं भूल पाया है :

भली लगें यह छानी–छपरी/यह पीपल की छाव।
गंधवती धरती मा जैसी/पिता सरीखा गाव,
ये पुरखो के बाग–बगीचे/मंदिर वापी–कूप,
कभी नहीं अँट पाया मेरे/मन में इनका रूप।[3]

वहीं माहेश्वर तिवारी जी ने अपना गाव, घर, परिवार व परिवेश को छोड़ने के बाद भी उसे अपनी स्मृतियों में संजोय रखा है–

मैं जिन्हें/पिछले सफर में/छोड़ आया था,
लोग अब/रहने लगे मुझमें/कोयलों से बोल
तोते की रटन/पिता की खांसी/थकी मा के भजन।[4]

और नईम जी अपने परिवेश को छोड़ने के बाद तो अपने आप को अधूरा महसूस करते हैं :

डूब में आते हुए/हलके, इलाके, नदी–पोखर
हो सकूँगा समूचा मैं /इन्हें खोकर?[5]

ठाकुर प्रसाद सिंह की ये पंक्तियाँ हमें गाँव की ओर खींच ले जाती हैं–

गाँव के किनारे है बरगद का पेड़/बरगद की झूलती जटाए
कैसे रे झूलती जटाए/झूले बस भूमि तक न आए।[6]

अधिकतर नवगीतकार गाववासी रहे हैं; अतः उनके गीत ग्राम्यजीवन की सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत को अपने में सहेजे हुए हैं। अपने गाव से आये हुए पाहुन से वहाँ की राजी–खुशी पूछते हुए नगर निवासी सहृदय का 'औत्सुक्य' दर्शनीय है–

पाहुन, गाम की कहो/गुबरीले हाथों में झाड़ू थामे सीता
भीगते पसीने में राम की कहो।[7]

शहरवासी होने पर शंभुनाथ सिंह के मन में बड़ा अन्तर्द्वन्द है कि अपने दो कमरों वाले इस लैट में वो किस–किस को आश्रय दें। वहा गाँव में तो सभी के लिए खुला आश्रय देने वाला बड़ा आगन था :

दो कमरों वाले इस लैट में/दू मैं किस–किस को आश्रय।
कहा बने तुलसी चौरा/कहा बनाये पूजा–घर
कहा रखे अक्षत–चंदन/ठाकुर जी का पीताम्बर।[8]

शहर में आने पर शंभुनाथ सिंह अनेक नवगीतकारों की तरह महानगर में क्षुब्ध हैं। कारण कि वे भीड़ में खो गये हैं। वहा गाँव में सब एक दूसरे को पहचानते थे। सबमें अपनापन था, लेकिन शहर में कोई उन्हें पहचानता नहीं। सब अजनबी हैं–

कहा पाँव धरे हम,/किसे याद करे हम,
यह अनजानी डगर है/अजनबी–सा शहर है।[9]

इसी तरह अकेलेपन के अहसास का चित्रण नवगीतकारों की अनेक रचनाओं में पाया गया है

लेकिन माहेश्वर तिवारी ने जिस अकेलेपन का चित्रण किया है वह देखने योग्य है–

तना जले–सा/अकेलापन/कहा तक
झेले/अकेला मन [10]
किसी ठहरी/झील–सा/हिलता नहीं तिनका

साथ हम/कब तक निभायें/अधमरे दिन का।[11]

वहीं नवगीतकार नईम जी को पूरा जीवन ही खाली लगता है और एक–एक दिन यू ही गुजर जाने का उन्हें मलाल है–

चले गये दिन पर दिन कितने खाली
उतर गई बालों की कालिख चेहरे–लाली,
बिना बुलाये आया था जो

बिना रुके वो भला गया।[12]

जीवन की व्यर्थता व खालीपन का अहसास माहेश्वर तिवारी जी को भी कही अधिक है–

खालीपन में/बैठे–बैठे/सुस्ताना/
है कई बहानों में/एक सा बहानाबे बे
खाली/सुर्खिया भिगाने में

रहा नहीं/कुछ भी/बिल्कुल 'सूना' होने में।[13]

नवगीतकारों का मन तो शहरवासी होने पर भी गाँव में रमा है लेकिन उन्हें दुखः है कि जो गाँव कभी भाई–चारे और अपनेपन के प्रतीक थे, उनमें बिखराव आ गया है। स्वार्थ समा गया है, आज गाँव के लोगों के दिलों में अविश्वास और सन्देह ने जन्म ले लिया है और आपसी प्रेम कहीं दूर तक भी दिखाई नहीं देता। ऐसी विपरीत दशा को देखकर नवगीतकार का मन विषण्ण है। चेतना स्तब्ध है स्वार्थान्ध ग्रामीणों ने अपने–अपने घर चौतरा बढ़ाकर गलियों को तंग कर दिया है। पारस्परिक विश्वास न रहने से सभी घरों के किवाड़ बन्द रहते हैं। आपसी स्नेह सम्बन्धों के अभाव में अब चौपालों पर पहले जैसी चहल–पहल नहीं, वहा मिठास भरे ग्राम्य गीत भी नहीं गाये जाते। नईम जी दुःखी है कि अपने डूबे गावो को कैसे उबारे–

सूख गई अन्तर धाराए/किस पानी से पाव पखारू ?

गले–गले तक फसे हुए जो,/कैसे डूबे गाव उबारू ?[14]

चूल्हे पड़े उदास कि चक्की गीत न गाये।

गाँव का वह अपनापन आत्मीयता धीरे–धीरे खोने लगी है। पारिवारिक विघटन यहाँ भी होने लगा है, सम्बन्धों का जैसा खोखलापन शहरों में है वह गाव में भी दिखाई देने लगा है, नवगीतकार की चिन्ता यही है। नईम जी कहते हैं कि–

अपनेपन जब विदा हो गये
बचे नहीं चौके, घर, आगन
सूखे से अधमरे हो रहे

घर–बाहर ये सावन।[15]

उमाकान्त मालवीय जी भी इस परिवर्तन से अत्यन्त दुःखी है–

निगल गये पनघट को
सड़कों के नल
बेबस बेपर्द देह, दृष्टि उठी जल।
आगन दालनों को
तरस गये घर

खोली दरखोली से घर गये उधर।[16]

आज गाँवों में राजनीति ने प्रवेश कर लिया है, और गाँवों का चेहरा इस कदर बिगाड़ दिया है कि अब वह पहचान में नहीं आता–

ये शहर होते हुए से गाँव
पहचाने नहीं जाते।
दाव पर अन्धी सियासत के
हुए गिरवीं सभी चौपाल
खून के रिश्ते हुए गुमराह
चलते हैं तुरुप की चाल,
तेज़ नख वाले उमराव
पहचाने नहीं जाते। [17]

नईम जी को लगता है कि राजनीति और सियासत गाच में आ जाने से गाँव को नजर लग गई है–

सिरे से ही लग गयी है नज़रे हमारे गाँव को
आज की ये सियासत तरसा गयी है छाँव को,
सभी आमादा पलीते लगाने को यहा पर
खा गया क्यों मात मन ये जीत कर भी दाँव को। [18]

संदर्भ

1. शर्मा, योगेन्द्र दत्त : ''यात्रा में साथ–साथ सम्पादक देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'', पृष्ठ 89.
2 निगम, विनोद : 'नवगीत : स्वरूप विश्लेषण सम्पादक प्रेमशंकर रघुवंशी'', पृष्ठ 170.
3 डॉ. सिंह, शम्भूनाथ : ''माताभूमिः पुत्रोडहं पृथिव्या'' पृष्ठ 31.
4 तिवारी, माहेश्वर : ''सागर मुद्राओं पर तर्जनी'', पृष्ठ 8.
5 नईम : ''लिख सकूं तो'' पृष्ठ 85.
6 सिंह, ठाकुर प्रसाद : ''वंशी और मादल'' पृष्ठ 48.
7 राजीव, विद्यानंदनः''हिंदी नवगीतःसंदर्भ और सार्थकता सम्पादक वेदप्रकाश अमिताभ'', पृष्ठ 220.
8 डॉ. सिंह, शम्भूनाथ : ''माताभूमिः पुत्रोडहं पृथिव्या'' पृष्ठ 46.
9 डॉ. सिंह, शम्भूनाथ : ''वक्त की मीनारपर'' पृष्ठ 65.
10 डॉ. सिंह, शम्भूनाथ : ''जहा दर्द नीला है'' पृष्ठ 15.
11 तिवारी, माहेश्वर : ''हरसिंगार कोई तो हो'' पृष्ठ 20.
12 नईम : ''उजाड़ में परिन्दे'' पृष्ठ 85.
13 तिवारी, माहेश्वर : ''हरसिंगार कोई तो हो'' पृष्ठ 31.
14 नईम : ''पथराई आंखे '' पृष्ठ 92.
15 नईम : ''उजाड़ में परिन्दे'' पृष्ठ 33.
16 मालवीय, उमाकान्त : ''सुबह रक्त पलाश की'' पृष्ठ 35.
17 तिवारी, उमाशंकर : ''नवगीत के प्रतिमान तथा आयाम'' पृष्ठ 71.
18 नईम : ''उजाड़ में परिन्दे'' पृष्ठ 78.